REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 9 | ISSUE - 6 | MARCH - 2020

भगवानदास मोरवाल का उपन्यास "सुर बंजारन"

किरीटकुमार बी. पटेल
सहायक अध्यापक, धावड़िया प्राथमिक शाला, तह. झालोद, जिला दाहोद,
पीन. 389170 (गुजरात)

"सुर बंजारन" भगवानदास मोरवाल का उपन्यास है । हमारे यहां हिंदी साहित्य में किसी अभिनेता, लोक कलाकार या लोकगायक की जिंदगी को आधार बनाकर शायद ही कोई कहानी या उपन्यास लिखा गया हो। सुरेंद्र वर्मा के उपन्यास "मुझे चांद चाहिए" ने जरूर एक अभिनेत्री की जीवन गाथा के बहाने से राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और आधुनिक हिंदी रंगमंच का गहराई से जायजा लिया था। मराठी भाषा में अभिराम भड़कमकर का उपन्यास "बाल गंधर्व" और बांग्ला में विनोदिनी दासी का उपन्यास "नटी विनोदिनी" चर्चित रचनाएं रही हैं। यूं मराठी में ही शिरवाडकर के नाटक "नट सम्राट" का उल्लेख भी किया जा सकता है, भले ही उसकी रचना के लिए इतालवी भाषा के सुप्रसिद्ध नाटककार लुई पिरांदेलो के नाटक हेनरी द फोर्थ से प्रेरणा मिली।

"सुर बंजारन" हिन्दी के देशज और लोक–मानस की अनुकृतियों को उकेरने वाले कथाकार भगवानदास मोरवाल की छठी औपन्यासिक कृति है। यह उपन्यास लगभग मरणासन्न और विलुप्त होती लोक–कला का दस्तावेज़ भर नहीं है, बल्कि एक अलक्षित और गुम होती विरासत का सांस्कृतिक इतिहास भी है। इसे हिन्दी का पहला ऐसा उपन्यास कहा जा सकता है जिसके आख्यान के केन्द्र में हाथरस शैली की नौटंकी, उसकी पूरी परम्परा और सुरों की समाप्त प्रायः दुनिया है। एक ऐसी दुनिया जिसने अपना वृत्त, लोक में प्रचलित श्रुतियों, ऐतिहासिक–सामाजिक घटना–परिघटनाओं पर आधारित लोक–धुनों व सुरों से निर्मित किया है। सुर बंजारन हिन्दी के देशज और लोक–मानस की अनुकृतियों को उकेरने वाले कथाकार भगवानदास मोरवाल की छठी औपन्यासिक कृति है।

पारम्परिक और आधुनिक गीत–संगीत व उनके साज़ों से छिड़े सुरों की लोक– परम्परा का अद्भुत मिश्रण है यह उपन्यास। इसकी नायिका रागिनी केवल एक पात्र नहीं है बल्कि ऐसे असंख्य अलक्षित सुरों का प्रतिनिधि–चरित्र है, जो आज गुमनामी के अँधेरे में खोए अपने–अपने सुरों के मीड़, गमक, खटका को तलाश रहे हैं। चौबोला, दौड़, दोहा, बहरतबील, दादरा, ठुमरी, छन्द, लावनी, बहरशिकस्त, सोहनी जैसे छन्द जब–जब ढोलक की थाप और झील–नक्काड़े की धमक पर गले को चीरते हुए रात के सन्नाटे में गूँजते हैं, तब लगता है मानो नटराज के दरबार में रागों की बारिश हो रही है। इसलिए इसे हाथरस शैली की नौटंकी की एक अदाकारा का जीवन–वृत्त कहना भी बेमानी होगा, बल्कि यह लोक से संचित विरासत की एक प्रबल अदम्यता और जिजीविषा का लोमहर्षक आख्यान के रूप में हमारे सामने आता है।

भगवानदास मोरवाल का उपन्यास 'सुर बंजारन' पढ़ते हुए, एकाएक आप ठिठकते हैं उस दोराहे पर आकर, जहाँ ये तय करना एक पाठक के लिए कठिन हो जाता है कि उपन्यासकार को किस धरातल पर रखकर परखें ? वो लेखक, जिसका अब तक का लेखकीय चरित्र एक सामाजिक–राजनैतिक उपन्यासकार का रहा है। 'काला पहाड़', 'हलाला' और 'रेत' लिखकर कोई व्यक्ति अचानक नौटंकी की गुमनाम हो चली नायिका को अपने उपन्यास का प्लॉट बनाएगा, ये जानना अचरज पैदा करता है। हालाँकि, अपनी स्मृतियों की किताब

'पकी जेठ का गुलमोहर' में मोरवाल जी ऐसे कई सूत्र देते से जान पड़ते हैं। हाथरस शैली की एक दौर में बेहद प्रचलित रही नौटंकी विधा और उसकी ढेरों नायिकाओं की तरह नज़र आने वालीं कृष्णा कुमारी के बहाने 'सुर–बंजारन' में लेखक ने परतदार आख्यान गढ़ते हुए उस इतिहास और समय का एक बड़ा कैनवास रच दिया है। इस तथ्य पर चौकन्नी निगाह रखते हुए कि इतिहास से गुज़रकर, उसकी जड़ता से दूरी बनाकर वर्तमान के उस बंजर तक सफल ढंग से आने की लेखकीय पहल हो सके। जिसकी नयी ज़मीन पर ढेरों कृष्णा कुमारी लगभग हाशिये पर जीते हुए दम तोड़ने को विवश खड़ी हैं।

संगीत पर आधारित कोई रचना हो, तो बरबस कुछ चीजों की सुध आती है। उस दौर का सांस्कृतिक परिवेश कैसा था ? स्त्रियाँ अपने हुनर का इस्तेमाल घर की चाहरदीवारी से बाहर किस तरह कर सकती थीं ? भाषा और संगीत के सहमेल से बनने वाली आवाज़ों के वृत्तान्त कौन सहेज रहा था ? और सबसे ज्यादा ये बात कि कहानी का उन्मेष किस सत्य या तर्क पर अपनी संरचना की सम्भावना तलाश रहा था। 'सुर–बंजारन' के संदर्भ में इन सारी जिज्ञासाओं के कुछ–कुछ समाधान मिलते हैं, और सुखद रूप से वो हल खुद नौटंकी की कलाकार के मार्फ़त लेखक की रचनात्मकता के बहाने सामने आते हैं।

'सुर–बंजारन' एक कुशल नट की तरह इस उपन्यास में भाषा, शिल्प, आख्यान और स्मृति को अत्यंत कलात्मक करतब में तब्दील किया गया है। एक पवित्र तरलता के साथ, जैसे कथानक खुद नदी या जल होना चाहता हो। स्मृतियों के संसार का वर्तमान में रूपांकन इतना सुंदर बन गया है कि लगता है हम बचपन की उन टिमटिमाती कंदीलों से झाँकने वाली रंग–बिरंगी रोशनी के किसी उत्सव में अचानक ही आ गए हों।

यह उपन्यास नौटंकी के रूप में स्थापित हो चुकी उस विडम्बना का भी करुणामयी पाठ प्रस्तुत करता है, जिसने हमारे समाज में एक हिकारत और उपहास भरा मुहावरा गढ़ लिया है। एक ऐसा मुहावरा जिसने मान्य छन्दों की खनक को बदरंग कर दिया है। अपनी प्रखर संवेदना, पहले उपन्यासों की तरह रंगीन क़िस्सागोई और अपनी बेधक भाषा के लिए सर्वमान्य कथाकार भगवानदास मोरवाल की यह कृति एक अनूठी उपलब्धि है। अनूठी इसलिए कि नौटंकी अर्थात सांगीत को केन्द्र में रखकर आख्यान रचना एक चुनौती भरा काम है। मगर इस चुनौती और जोखिम की परवाह किये बिना लेखक इस आख्यान को अपनी परिणति तक पहुँचाने में बखूबी कामयाब रहा है। एक अलक्षित और उपेक्षित लोक–कला में समाहित जीवन की ओर लौटते हुए, इसके बहुविध रूपों और भाव–प्रवाह को लेखक ने, न केवल समृद्ध किया है अपितु इससे पाठक व हमारा साहित्य दोनों समृद्ध होंगे–ऐसा विश्वास है।

यह उपन्यास दो कारणों से रेखांकित किया जाना चाहिए। एक नौटंकी नाट्य शैली की गायिका और कलाकार रागिनी की जीवनगाथा को तो प्रस्तुत करता ही है, इससे भी ज्यादा यह इस नाट्य शैली के जन्म, उत्थान और पतन की महागाथा को बड़े ही मार्मिक ढंग से हमारे सामने लाता है। हम जानते हैं कि नौटंकी की कानपुर शैली में अभिनय पर और हाथरस शैली में गायिकी पर जोर होता है। मोरवाल ने बड़े मनोयोग से शोध–अनुसंधान और पूरी खोजबीन के साथ एक–एक तथ्य को उघाड़कर रख दिया है। उपन्यास में आए सभी पात्र हमारे इतने परिचित हैं कि पढ़ते–पढ़ते हम उनके साथ एकाकार हो जाते हैं। इस उपन्यास में जगह–जगह इस बात की संभावनाएं थीं कि सारे विवरण बहुत ही भावुक और मैलोड्रामैटिक हो जाते। लेकिन लेखक ने कहीं भी ऐसा नहीं होने दिया, चाहे रागिनी की मां की मृत्यु का प्रसंग हो अथवा प्रदर्शन के दौरान उनके पति की मृत्यु की घटना । जिस तरह से इन प्रसंगों को रचा गया है, उससे लेखक का कलात्मक संयम जाहिर होता है। इससे बड़ा संयम और क्या होगा कि शाहजहां के सबसे बड़े बेटे दाराशुकोह ने जिस शहर को बसाया और जिसमें इसकी नायिका रागिनी रहती थी, उसका नाम उपन्यास की अंतिम चार पंक्तियों में जाकर हमारे सामने आता है।

"सुर बंजारन" में लेखक इस हद तक अपने कथानक और उसकी नायिका के साथ गुंफित हो गया है कि कुछ तथ्यों की अनदेखी कर दी गई है। उदाहरण के लिए ऐसा नहीं था कि आगा हश्र कश्मीरी को पारसी रंगमंडली में रोज एक नाटक लिखकर देना होता था। सच्चाई ये है कि उन्हें एक साल में एक नया नाटक लिखकर देना होता था। यहां इस बात का जिक्र करना भी जरूरी लगता है कि उपन्यास में आए लगभग सभी पात्रों के नाम वास्तविक हैं, ऐसे में सिर्फ नायिका का नाम काल्पनिक क्यों ? इसके पीछे रचनाकार के कुछ सामाजिक दबाव अवश्य रहे होंगे। इसके बावजूद विषयवस्तु, रचना शैली और पठनीयता में निश्चित रूप से यह उपन्यास एक मील का पत्थर माना जा सकता है।

संदर्भ

1. सुर–बंजारन, भगवानदास मोरवाल

किरीटकुमार बी. पटेल
सहायक अध्यापक, धावड़िया प्राथमिक शाला, तह. झालोद, जिला दाहोद,
पीन. 389170 (गुजरात)